International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 9, Issue 02, February 2022
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

संवेदनशील समाज के निर्माण में भारतीय दर्शन का योगदान

डा॰ सतीश कुमार
प्रवक्ता हिन्दी
शिक्षा विभाग, हरियाणा सरकार

समाज का स्वरूप व्यक्ति पर निर्भर करता है। क्योंकि व्यक्ति ही समाज की ईकाई है। समाज के बारे में कहा जाता है– "समाज सामाजिक संबंधों का जाल है।'' तात्पर्य यह है कि मनुष्य के स्वभाव और आचरण का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर पड़ता है। प्रस्तुत शोध आलेख में दो महत्वपूर्ण प्रत्यय है– (i) संवेदनशील समाज तथा (ii) वैदिक विचारधारा। 'संवेदनशील समाज' समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों का योग है तथा वैदिक विचारधारा से भारतीय संस्कृति के उद्‌गम का बोध होता है। वस्तुतः वैदिक चिन्तन ही भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। वेद की रचना संस्कृत भाषा में हुई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वैदिक परंपरा के सभी सम्प्रदायों का मूल ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही लिपिबद्ध है। सूत्र, भाष्य, टीका, खद्योतिका आदि संस्कृत भाषा में ही रचित है। अतएव संवेदनशील समाज के निर्माण में संस्कृत भाषा की महती भूमिका मानी जाती है क्योंकि मनुष्य का परिष्कार संस्कृत भाषा में प्रणीत ग्रंथों के

अध्ययन तथा तदनुसार सदाचार मूलक जीवन व्यतीत करने से ही संभव है। वैदिक विचारधारा के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय में लिखते है– ''वैदिक युग के आर्य मोक्ष के लिए चिन्तित नहीं थे, न वे संसार को असार मानकर उससे भागना चाहते थे। उनका प्रार्थना की ऋचाऐं ऐसी हैं

जिनसे पस्त–से–पस्त आदमियों के भीतर भी उमंन का लहर जाग सकती है। उन्हें ऋत का ज्ञान प्राप्त हो चुका था और वे मानत थ कि सारी सृष्टि किसी एक ही प्रच्छन्न शक्ति से चालित और ठहरी हुइ तथा उस शक्ति की आराधना करके मनुष्य जो भी चाहें, प्राप्त कर सकता है। किन्तु बराबर उनकी प्रार्थना लंबी आयु, स्वस्थ शरीर, विजय, आनन्द और समृद्धि के लिए ही की जाती थी। वैदिक प्रार्थनाऐं, प्रार्थनाएँ भी है और सबल स्वस्थ, प्रफुल्ल जीवन को प्रोत्साहन देनेवाले मन्त्र भी।''[1]

'वेदो के अवगाहन से यह परिलक्षित होता है कि उस समय के लोग सांसारिक जीवन से संबंधित विषयों से अभिज्ञ थे। उन्हें पृथ्वी, जल, अग्नि एवम् वायु के गुणों का परिचय था तथा वे दीर्घ जीवन के लिए देवताओं से प्रार्थना करते थे।'[2] इस तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय का समाज संवेदनशील था। मनुष्य की आशा और आकांक्षा, राग एवम् द्वेष, प्रेम तथा घृणा एवम् शत्रु–मित्र आदि के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए तथा किस परिस्थिति में मनुष्य का आचरण होना चाहिए, इसका भी परिज्ञान था। प्रकृति के उपहार से उपकृत होकर प्राकृतिक देवताओं जैसे– वरूण, मित्र, सविता, सूर्य आदि की प्रार्थना समाज की कल्याण के लिए करने की परंपरा थी। उन्हें यह भी

[1] (संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह 'दिनकर' पृ0सं0–54)
[2] (ऋग्वेद, 10,164,4, अथर्ववेद 3,2,4 तथा 20,96,9)

© Associationof Academic Researchers and Faculties (AARF)

विश्वास था कि उपासना द्वारा मनोरथ की सिद्धि हो सकती है।[3]

वैदिक काल में कर्मवाद के सिद्धांत के आधार पर कर्मफल में तत्कालीन समाज की आस्था थी। ये माना जाता था कि अच्छे कर्म करने से धर्म होता है तथा कर्मफल के कारण उससे सुख की प्राप्ति होती है। अनुचित कर्म करने से पाप होता है और इसका परिणाम दुःखद होता है। कर्मवाद के कारण अधिकांश मनुष्यों की रूचि धार्मिक कार्यो में होती थी और इसका परिणाम अत्यन्त ही सुखद होता था। संवेदनशील समाज के मूल में धर्म है तथा यह धर्म ऋत के अनुकूल है। ऋत को संसार का नियामक माना गया है। नैतिक नियमों के आधार पर संसार का संचालन होता है तथा इसके अनुपालन में ही संसार का कल्याण निहित है। प्रो0 नित्यानंद मिश्र लिखते हैं–''ऋत सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त एक व्यवस्था का नाम है। इसी ऋत के कारण ही विश्व की खगोलीय, भौगोलिक, भूगर्भीय, मानसिक आदि सभी प्रकार की धटनाऐं नियमबद्ध तरीके से घटित होती रहती है।''[4]

इस प्रकार वरूण जिस ऋत के संरक्षक हैं, वह नियमों से परिचालित होता है। अतः यह न्याय का द्योतक है तथा सत्य का उद्घोषक है। ऐसा माना जाता है कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तथा ऋतुओं के नियमित गति एवम् क्रम से इस धारणा का उदय हुआ है। इस संदर्भ में डॉ0 राधाकृष्णन् का मत उल्लेखनीय है– 'ऋत की धारणा के रूप में विश्व की वाह्य दृश्यमान व्यवस्था के मूल में स्थित नैतिक नियम की सत्ता को स्वीकार किया गया। जगत् की घटनाओं के पूर्व ऋत विद्यमान है और उसके परिवर्तनशील क्रम ऋतु की अभिव्यक्तियाँ है। इसीलिए

---

[3] (ऋग्वेद, 8,13,63)
[4] (प्रो0 नित्यानंद मिश्र, नीतिशास्त्र, पृ0सं0 398)

© Associationof Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

ऋत को सबका जनक कहा गया है।'[5]

संवेदनशील समाज के लिए सत्य की प्रति संकल्पित होना आवश्यक हो जाता है तथा धर्म विहित आचरण को श्रेयस्कर माना जाता है। ऋत का मार्ग ही सदाचार का मार्ग समझा गया, जो बुराईयों से असंपृक्त यथार्थ पथ है।[6]

वैदिक समाज की यह धारणा थी कि ज्ञान प्राप्ति हेतु कर्म की आवश्यकता होती है। बिना पवित्र कर्म के अन्तःकरण के मल दूर नहीं हो सकते और अन्तःकरण के निर्मल हुए बिना अहंकार का दूर होना संभव नहीं है और इस प्रकार ज्ञान की तभा नहीं हो सकती है। अतः वेद में ज्ञान के साथ पवित्र आचरण तथा शुद्ध कम पर जोर दिया गया है। संवेदनशील समाज के लिए पवित्र आचरण तथा शुद्ध कर्म अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं क्योंकि इन्हीं कर्मों के आधार पर मनुष्य करूणा से परिपूर्ण होता है तथा संसार के सभी भूतों के प्रति उसके मन में कल्याण के विचार का उदय होता है।

वेद में विभिन्न देवताओं की उपासना पर ध्यान दिया गया है। उपासना, प्रार्थना के रूप में करने की परम्परा वेद में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि समाज को संगठित एवम् संवेदनशील होने के लिए सामूहिक प्रार्थना पर तथा उसके विशेष सामर्थ्य पर बल दिया गया है।[7]

संवेदनशील सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए वेद में तीन प्रकार के ऋणों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है– देवऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण। देवों के प्रति कर्त्तव्य की पूर्ति यज्ञ के सम्पादन से होती है। ऋषि

[5] (राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन, वॉल्यूम 1, पृ0सं0 79–80)
[6] (ऋग्वेद, 10/136/6)
[7] (ऋग्वेद–1–17–9)

ऋण का तात्पर्य है कि प्राचीन पुरूषों के प्रति सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के लिए ऋण है, जिसे हम स्वाध्याय के द्वारा उस परम्परा को ग्रहण कर उसे आगे की पीढ़ी तक पहुँचाकर ऋण से मुक्त होते हैं। पितृ ऋण से संतति के सूत्र को आगे बढ़ाकर ऋण से कोई व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

उपर्युक्त तीन ऋणों के अतिरिक्त समाज को संवेदनशील बनाने के लिए पंचमहायज्ञों का विधान किया गया है, जो इस प्रकार है। ये पाँच प्रकार के यज्ञ–भूत यज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव यज्ञ एवम् ब्रह्म यज्ञ है। इस संदर्भ में तारापद चौधरी ने शतपथ ब्राह्मण (1–7–2–1–5 तथा 11–5–6–1) का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, ''सामाजिक रूप में मनुष्य ऋषियों, देवताओं, पितरों, मनुष्यों तथा पशुओं का ऋणी होकर जन्म लेता है, ये ऋण क्रमशः वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, पुत्रोत्पत्ति, अतिथि सत्कार तथा आहार प्रदान करके चुकाये जा सकते हैं।'[8]

वस्तुतः ये पंच महायज्ञ विशेषतः कर्त्तव्य पालन तथा कृतज्ञता ज्ञापन के लिए किये जाते हैं। काणे कहते हैं, ''पंचमहायज्ञों के क्रियान्वयन का मुख्य उद्देश्य ह विधाता, प्राचीन ऋषियों, पितरो, जीवों एवम् सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रति (जिसमें असंख्य जीव रहते हैं) अपने कर्तव्यों का पालन करना। किन्तु श्रौत यज्ञों में प्रमुख प्रेरणा रहती है स्वर्ग, संपत्ति, पत्र आदि की प्राप्ति।''[9]

वेद में संवेदनशील समाज के द्वारा शुभ जीवन की परिकल्पना की जाती है। पंचमहायज्ञ के द्वारा ऋषियों, पितरों तथा देवताओं के अतिरिक्त मनुष्यों एवम् पशुओं के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन एवम् सम्मान प्रदर्शन किये जाते हैं। यहाँ यह

[8] (नीतिशास्त्र, नित्यानंद मिश्र से उद्धृत पं0सं0–403)
[9] (नीतिशास्त्र, नित्यानंद से उद्धृत, पृ0सं0–403)

© Associationof Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मनुष्य तथा पशुओं के प्रति भी हम कृतज्ञता ज्ञापन क्यों करे? इसका उत्तर भी स्पष्ट है। कोई भी मनुष्य केवल अपने पर निर्भर रहकर नहीं रह सकता, उसे एक समाज की नितान्त आवश्यकता होती है। उसे अपने अस्तित्व विकास, समृद्धि, कष्ट—निवारण आदि के लिए अन्य मनुष्यों से मदद लेनी ही पड़ती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में मनुष्यों का भी ऋणी हो ही जाता है। इस ऋण से भी मुक्त होना आवश्यक ही हैं। इसी प्रकार मनुष्य को पशुओं तथा अन्य जीवों पर भी निर्भर रहना ही पड़ता है। इस तरह वह उनका भी ऋणी हो जाता है। उदाहरण के लिए मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए दूध कितना अधिक महत्वपूर्ण है, यह सर्वविदित है। यह दूध हमें प्रचुर मात्रा में गाय एवम् अन्य पशुओं से प्राप्त होता है। कृषि, परिवहन, युद्ध आदि अनेक कार्यों में पशुओं की आवश्यकता होती रहती है। अतः इस प्रकार का ऋण चुकाना भी आवश्यक है।

मनुष्य एक सचेतनशील प्राणी है तथा उसमें पशुता और विवेकशीलता पहा सन्निहित है। मनष्य के आधार पर ही समाज को संगठित किया जाता है। अतएव समाज का स्वरूप व्यक्तियों के स्वभाव पर निर्भर करता है। यही कारण है कि ऋग्वेद में मनुष्य के पशुत्व एवम् विवेकशील गुण के साथ आध्यात्मिक चेतना के उदय के लिए संस्कारिक करने की योजना है। अच्छे संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य का परिष्कार हो सकता है और परिष्कृत एवम् संस्कार सम्पन्न मनुष्य ही संवेदनशील समाज के निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धार्मिक आचरण एवम् सदाचार से समन्वित मनुष्य समाज को पथ प्रदर्शन करने में सक्षम होता है। ऐसे व्यक्ति का आचरण भयरहित एवम् तर्कपूर्ण चिन्तनों के आधार पर निर्धारित होता है। डॉ0 राधाकृष्णन् ने वेद की विशेषता का उल्लेख करते हुए

कहा है, ''चिन्तनशील व्यक्तियों के विचारों के प्रस्फुटित हो सकने तथा विभिन्न कलाओं और विज्ञानों के समृद्ध हो सकने के लिए एक सुव्यवस्थित समाज का होना आवश्यक है जो पर्याप्त सुरक्षा और अवकाश प्रदान कर सके।[10]

वस्तुतः मनुष्य की अपूर्णता तथा मनुष्य की दुर्बलता की ग्रंथी से मुक्ति के लिए एक उच्चतर आध्यात्मिक सत्ता की आवश्यकता होती है जोदृ पथ प्रदर्शक, सच्चा मित्र और एक ऐसा आधार बन सके जिसका आश्रय व्यक्ति और समाज ले सके और जिससे वह विपत्ति में भी सहयोग कर सके, यह सभी प्रकार की आकांक्षाऐं एक व्यथित ह्रदय के पक्ष में स्वाभाविक है। संवेदनशील समाज के लिए आदर्श मंत्र के रूप में वैदिक शांति मंत्र का उल्लेख किया जाता है

ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।।

संदर्भ

1. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय–पृ0सं0–54
2. ऋग्वेद, 10, 164, 4, अथर्ववेद, 3, 2, 4 तथा 20, 96, 9
3. ऋग्वेद, 8, 13, 63 4.
4. प्रो० नित्यानंद मिर, नीतिशास्त्र, पृ0सं0– 398
5. राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन, वॉल्यूम 1, पृ0सं0 79–80
6. ऋग्वेद, 10 । 136 । 6
7. ऋग्वेद, 1–17–9
8. प्रो0 नित्यानंद मिश्र, नीतिशास्त्र से उद्धृत पृ0सं0– 403
9. प्रो0 नित्यानंद मिश्र, नीतिशास्त्र से उद्धृत पृ0सं0– 403

[10] (भारतीय दर्शन, खण्ड–1, राधाकृष्णन्, पृ0सं0–17)

10. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, खण्ड–2, पृ0सं0– 17

© Associationof Academic Researchers and Faculties (AARF)